जैन काल गणना के स्रोत

डॉ० कमलेश कुमार जैन

जैन मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण लोक की रचना छह द्रव्यों से हुई है, जिनके नाम हैं– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। लोक दो भागों में विभक्त है– लोकाकाश और अलोकाकाश। अलोकाकाश में केवल आकाश ही आकाश है और शेष पांच द्रव्यों का अभाव है, किन्तु लोकाकाश में उपर्युक्त सभी द्रव्य पाये जाते हैं।

जिसमें ज्ञान और दर्शन रूप चेतना पाई जाये वह जीव है। इससे भिन्न शेष सभी द्रव्य अजीव हैं, जिन्हें सामान्य रूप से पुद्गल के नाम अभिहित किया जाता है। इन्हीं दोनों को अन्य दर्शनों में जड़ और चेतन के नाम से पुकारा जाता है। जैन मान्यतानुसार अजीव या जड़ द्रव्य को पांच भागों में विभक्त किया गया है– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें जीव द्रव्य को मिलाने पर पूर्वोक्त छह द्रव्य जैन परम्परा में मान्य हैं, जिनसे इस सृष्टि अथवा लोक का निर्माण हुआ है।

इस लोक में ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न जीव से भिन्न जो कुछ भी दृश्यमान जगत् है वह सब पुद्गल की पर्यायें है। जो जीव और पुद्गल के चलने में सहायक हो वह धर्मद्रव्य है। लोक प्रचलित धर्म शब्द से यह धर्मद्रव्य सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार जो जीव और पुद्गल के रुकने में सहायक हो वह अधर्म द्रव्य है। यह भी लोक प्रचलित अधर्म शब्द से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में इन्हीं धर्म और अधर्म द्रव्य को क्रमशः तेजोवाही ईथर और क्षेत्र का स्थानापन्न माना जा सकता है। जो ठहरने को स्थान दे, वह आकाश द्रव्य है। इसे ही वैज्ञानिक शब्दावली में स्पेस कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय होने वाले परिवर्तन में जो कारणभूत है वह काल द्रव्य है। इसके वर्तना, परिणाम, क्रिया और अपरत – ये कार्य हैं। समय काल की सबसे छोटी अविभाज्य इकाई का नाम है और इसकी सबसे बड़ी इकाई कल्पकाल है। कल्पकाल की गणना सम्भव न होने से इसे असंख्यात वर्ष भी कहा जाता है।

पुनः कल्पकाल दो भागों में विभक्त है– उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल। उत्सर्पिणी काल में क्रमशः सुख की वृद्धि होती है और अवसर्पिणी काल में क्रमशः सुख–सुविधाओं का ह्रास होता है। वस्तुतः दोनों में यह अन्तर सुख–दुःख के बढ़ते या घटते क्रम का है। यदि क्रम पर विचार न किया जाये तो दोनों में ठीक वैसे ही अन्तर नहीं है जैसे प्रत्येक माह के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चांदनी में। क्योंकि रात्रि में चांदनी दोनों पक्षों में समान रूप से रहती है। अन्तर केवल इतना है कि शुक्ल पक्ष में चांदनी का बढ़ता क्रम है और कृष्ण पक्ष में घटता क्रम। पुनः प्रत्येक को छह–छह आरों अथवा कालों में विभक्त किया गया है अवसर्पिणी काल में इनकी संज्ञा है– १. सुषमा-सुषमा, २. सुषमा, ३. सुषमा-दुषमा, ४. दुषमा-सुषमा, ५. दुषमा और अन्तिम ६. दुषमा-दुषमा इन्हीं छहों को विपरीत क्रम से रखने पर अर्थात् १. दुषमा-दुषमा, २.दुषमा, ३. दुषमा-सुषमा, ४. सुषमा-दुषमा, ५. सुषमा और अन्तिम ६. सुषमा-सुषमा- ये छह उत्सर्पिणी काल के घटक हैं। जैन मतानुसार वर्तमान में अवसर्पिणी काल के अन्तर्गत यह पंचम दुषमा काल चल रहा है।

जैनधर्म के वर्तमान कालीन चौबीस तीर्थंकरों अर्थात् धर्मप्रवर्तकों में भगवान् महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं इनका जन्म चतुर्थकाल के अन्तिम समय में हुआ था। भगवान् महावीर तीस वर्षों तक घर में रहे, तदनंतर

उन्होनें दीक्षा लेकर बारह वर्षों तक उग्र तपश्चरण कर बयालीस वर्ष की आयु में केवलज्ञान प्राप्त किया और धर्मोपदेश देते हुए बहत्तर वर्ष की आयु में आधुनिक बिहार प्रान्त के पावापुर से मुक्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्त किया। भगवान् महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ–

विक्कमरज्जारंभा पुरओ सिरिवीरनिव्विुई भणिया।
सुन्न–मुणि–वेय (४७०) जुंतो विक्कम–कालाउ जिणकालो।। स्थविरावली (मेरुतुंग)।।

यति वृषभाचार्य (ईसा की पांचवी–छठी शताब्दी) रचित तिलोयप० (वि. सं. ५४०) में वीर निर्वाण के पश्चात् शक राजा की उत्पत्ति के सम्वत् में चार मत पाये जाते हैं। इन मतों को प्रकट करने वाली मूल गाथा इस प्रकार है–

वीरजिणे सिद्धिगदे चदुक्सय–इगिसद्धि–वास परिमाणे।
कालम्मिं आदिक्कंते उपण्णो एत्थ–सक–राओ।।
अहवा वीरे सिद्धे सहस्स–णवकम्मि सग–सयष्भहिए।
पणसीदिम्मि यतीदे, पणमासे सक–णिओ जादो।।
चोद्दस–सहस्स–सग–सय–ते णवदी–वास–कंल–विच्छेदे।
वीरेसर–सिद्धादोधी, उप्पण्णो सग–णिओ अहवा।।
णिव्वाणे बीरजिणे, छव्वास–सदेसु पंच–वरिसेसुं।
पणमासेसु गदेसुं, संजादो सग–णिओ अहवा।। तिलोयपण्णत्ती ४/१५०८–१५११

अर्थात् वीर जिनेन्द्र के मुक्ति प्राप्त होने के चार सौ इकसठ (४६१) वर्ष प्रयाण काल के व्यतीत होने पर यहां शक राजा उत्पन्न हुआ। अथवा वीर भगवान् के सिद्ध होने के नौ हजार सात सौ पचासी (९७८५) वर्ष और पांच (५) मास व्यतीत होने पर शक नृप उत्पन्न हुआ। अथवा वीर भगवान की मुक्ति के चौदह हजार सात सौ तिरानबे (१४७९३) वर्ष व्यतीत होने पर शक उत्पन्न हुआ अथवा वीर भगवान् के निर्वाण जाने के छह सौ पांच (६०५) वर्ष और पांच (५) मास व्यतीत हो जाने पर शक नृप उत्पन्न हुआ।

परन्तु इन सबमें अन्तिम मत अर्थात् 'वीर भगवान् के निर्वाण जाने के पश्चात् ६०५ वर्ष, ५ माह बाद शक राजा उत्पन्न हुआ। इस मत के साथ उपर्युक्त येरूतुंगकृत स्थविरावली के उल्लेख की संगति बैठती है। अत: जैन काल गणना हेतु उपर्युक्त अन्तिम मत को ही स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि धवला टीका के लेखक आचार्य वीरसेन ने जिन तीन मतों का उल्लेख किया है उनमें इस मत के अनुसार वीर निर्वाण के पश्चात् ६०५ वर्ष, ५ माह पश्चात् शक राजा की उत्पत्ति हुई। इसी मत की पुष्टि विक्रम की नवमी शती के जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराण से भी होती है। पालि भाषा में लिखित दीघनिकाय के सामञ्जफल सुत में उल्लिखित छह तीर्थंकरों में मक्खलि गोशाल ओर निगण्ठ नाटपुत्त के नामों का उल्लेख है। भगवती सूत्र में भी गोशालक और महावीर का साथ–साथ उल्लेख प्रतिद्वन्द्वी के रूप में किया गया है। साथ ही इसका एक अन्य कारण यह भी है कि वर्तमान में जैन समाज द्वारा व्यवहार में प्रायोजित वीर निर्वाण संवत् से भी इसकी संगति बैठती है।

सामान्य रूप से जैन काल गणना के दो प्रमुख स्रोत हैं। प्रथम स्रोत के रूप में हम तत्कालीन राजाओं की परम्परा को आधार बनाकर काल गणना कर सकते हैं और द्वितीय आधार के रूप में हम भगवान् महावीर की परम्परा में प्राप्त स्थविरों के युगप्रधानत्व को लेकर काल गणना कर सकते हैं। उपर्युक्त के

अतिरिक्त मुनि कल्याण विजय ने आचार्य हिमवत्कृत थेरावली को भी आधार बनाकर एक तीसरी परम्परा का उल्लेख किया है, जिसमें समकालीन राजा और परम्परा प्राप्त जैनाचार्यों का समवेत रूप में समावेश हुआ है।

सर्वप्रथम राजाओं की परम्परा को आधार बनाकर प्रयोग के समय से लेकर शक राज्य और विक्रम संवत् तक की जैन काल गणना करते हुए पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि – जिस रात्रि में महावीर का निर्वाण हुआ उसी रात्रि में पालक मगध की गद्दी पर बैठा। पालक के राज्य के ६० वर्ष के पश्चात् नन्दों के राज्य का काल १५५ वर्ष बतलाया है। पुराणों के अनुसार नन्दवर्द्धन से लेकर अन्तिम नन्द पर्यन्त १२३ वर्ष होते हैं। इतने वर्ष तक नन्दों ने राज्य किया। ३२ वर्ष जो अधिक हैं। वे हमें उदायी के राज्य से पहले अथवा दूसरे वर्ष के आगे लाकर छोड़ देते हैं। अर्थात् पालक वंशकी तरह ध्यान खींचने लायक एक दूसरा काल उदायी के राज्यारोहण से प्रारम्भ होता है, किन्तु पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के छठें वर्ष (पालक का राज्यारोहण काल) और उदायी के राज्याभिषेक के बीच में अपने को ६४ वर्ष का अन्तराल छोड़ना चाहिये। जबकि जैन काल गणना के अनुसार पालक का राज्य काल ६० वर्ष ही है। इस तरह चन्द्रगुप्त के समय में पुन: ४ वर्ष का अन्तर आता है और इसमें चन्द्रगुप्त महावीर के निर्वाण के २१५ अथवा २१९ वर्ष पश्चात गद्दी पर बैठा। इस प्रकार भिन्न–भिन्न तिथियां आती है। मौर्योंके राज्य काल को वर्ष समूहों में विभाजित कर दिया है १०८ और ३०। उसमें १०८ वर्ष मौर्य वंश के हैं। ३० वर्ष पुष्यमित्र के है। उसके पश्चात् बलमित्र–भानुमित्र के ६० वर्ष सम्मिलित किये हैं। इस गणना के अनुसार हम महावीर निर्वाण के पश्चात् ४१३ वर्ष तक पहुंच जाते हैं। इसके पश्चात् ४० वर्ष नहपान का राज्य काल बतलाये हैं। इसके पश्चात् १३ वर्ष गर्दभिल्ल के राज्य के हैं और ४ शक राज्य के हैं। इन सबका जोड़ ४७० होता है (जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका, पृष्ठ १५३–१५४).

इसी ४०७ में यदि विक्रम संवत् और ईस्वी सन् के वर्षों का कुल अन्तर ५७ जोड़ दें तो ये संख्या ५२७ हो जाती है और ऐतिहासिकों के इस कथन कि – भगवान् महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० हुआ था, की पुष्टि हो जाती है। इसी प्रकार ४७० में यदि विक्रम संवत् एवं शक संवत् के वर्षों का अन्तर १३५ जोड़ दें तो वह संख्या ६०५ हो जाती है और उपर जो यह बतलाया गया है कि शक संवत् ६०५ वर्ष पूर्व भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था, इस की पुष्टि हो जाती है।इस जैन काल गणना में आचार्य हेमचन्द्र के उल्लेख को आधार बनाकर डॉ० हर्मन याकोबी, जार्ल चारपेन्टियर, काशी प्रसाद जायसवाल,डॉ० हार्नले आदि विद्धानों ने जो आपत्ति उठाई है, उन पर पं० जुगलकिशोर मुख्तार ने पर्याप्त ऊहायें करके उनकी आपत्तियों का निराकरण किया है और यह सिद्ध किया है कि वर्तमान विक्रम संवत् विक्रम की मृत्यु का संवत् है जो वीर निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् प्रारम्भ होता है।

भगवान् महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव सन् १९७३–१९७४ में मनाया गया था। अत: यदि २५०० में से १९७३ घटा दें तो भगवान् महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० ठहरता है, जो वर्तमान मान्यता के अनुसार ठीक बैठता है।

अब जैन काल गणना के द्वितीय स्रोत भगवान् महावीर की परम्परा के श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य स्थविरों के युगप्रधानता को आधार बनाकर यहां विचार किया जाता है। भगवान् महावीर निर्वाण से शक संवत् पर्यन्त अर्थात् ६०५ वर्ष में क्रमश: संघ स्थविर पद प्राप्त २० महापुरुष हुये हैं, जिसके गार्हस्थ, सामान्य श्रमणत्व और युगप्रधानत्व पर्याय काल का निरूपण स्थविरावली अथवा युगप्रधान पट्टावली में किया है।

मुनि कल्याण विजय ने उक्त स्थविरावली से तद् विषयक गाथाएं उद्धृत की हैं, जिनका आशय यह है कि महाबीर के निर्वाण के पश्चात् सुधर्मा २०, जम्बू ४४, प्रभव ११, शरयम्भव २३, यशो ५०, सम्भूति विजय ८, भद्रबाहु १४ और स्थूल भद्र ४५ वर्ष तक क्रमश: युगप्रधान पद पर रहे हैं। यहां तक वीर निर्वाण को २१५ वर्ष हो गए।

तदनन्तर आर्य महागिरी ३०, आर्य सुहस्ति ४६ और गुण सुन्दर ४४ वर्ष तक युगप्रधान रहे, इस प्रकार वीर निर्वाण के ३३५ वर्ष व्यतीत हुए।

तदनंतर निगोह व्याख्याता कालकाचार्य ४१ वर्ष और सांडिल्य ३८ वर्ष युगप्रधान रहे और वीर निर्वाण के ४१४ वर्ष पूर्ण हुये।

तदनन्तर रेवतीमित्र ३६ वर्ष और आर्य मंगु २० वर्ष तक युगप्रधान रहे। तब तक वीर निर्वाण को ४७० वर्ष हो गये। इसके बाद आर्यधर्म २४, भद्रगुप्त ३९, श्रीगुप्त १५ और बज्र ३६ वर्ष युगप्रधान रहे। इस तरह वीर निर्वाण को ५८४ वर्ष हुए । इसी काल में वीर निर्वाण से ६०५ वर्ष बीतने पर शक संवत् की उत्पत्ति हुई।

उपर्युक्त दो स्रोतों के अतिरिक्त मुनि कल्याणविजय ने हिमवत्कृत थेरावली को आधार मानकर एक तीसरे स्रोत का भी उल्लेख किया है, जिसमें वीर निर्वाण के पश्चात् लम्बी सूची प्रस्तुत की है तथा बीच–बीच में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी किया है जो इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इसी प्रकार यहां संक्षेप में जैन काल गणना के मुख्य स्रोतों पर प्रकाश डाला गया है, जिसकी सीमा वीर निर्वाण के पश्चात् और शक संवत् के मध्यवर्ती ६०५ वर्ष की है। शेष काल गणना हेतु परवर्ती विक्रम संवत् एवं शक संवत् स्वत: महत्वपूर्ण सहयोगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

जैन साहित्य का इतिहास-पूर्व पीठिका, लेखक पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रका० श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी–५, द्वितीय संस्करण, सन् १९९६

वीर निर्वाण संवत् और जैन काल–गणना, लेखक–मुनि कल्याण विजय, प्रवक्ता–क० वि० शास्त्र समिति,जालौर (मारवाड़ संवत् १९८७, वी० निं० सं० २४५७

प्रबन्धकोश का ऐतिहासिक विवेचन, लेखक– डॉ० प्रवेश भारद्वाज प्रका० प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, सन् १९८५

तिलोयपण्णत्ती (यतिवृषभाचार्य), द्वितीय खण्ड, भाषा टीका–आर्थिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी, प्रका० श्री १००८ चन्द्रप्रभ दि० जैन अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा– ३०१४११ (अलवर–राजस्थान द्वितीय संस्करण, विं० सं० २०५४, वी० नि० सं० २५२३

हरिवंशपुराण (जिनसेनाचार्य), संम्पा० – पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य प्रका०– भारतीय ज्ञानपीठ काशी, विं० सं० २०१९, वीं निं० सं० २४८८ प्राचीन भारतीय काल गणना एवं पारंपरिक संवत्सर,